International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746; Impact Factor: RJIF 5.34
Received: 19-04-2019; Accepted: 21-05-2019
www.alleducationjournal.com
Volume 4; Issue 4; July 2019; Page No. 36-38

वर्तमान शिक्षा का कितना सर्जन कितना विसर्जन

डॉ. पार्वती जे. गोसाई

आसि. प्रोफेसर, हिन्दी स्नातकोत्तर विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर, आणंद, गुजरात, भारत

प्रस्तावना

''शिक्षा कहती है, मैं सत्ता की दासी नहीं हूँ,
कानून की किंकारी नहीं हूँ, विज्ञान की दासी नहीं हूँ।
कला की प्रतिहारी नहीं हूँ, अर्थशास्त्र की बाँदी नहीं हूँ।
मैं तो घूर्म का पुनरागमन हूँ।
मनुष्य के बुद्धि, हृदय एवं सर्व इन्द्रियों की स्वामिनी हूँ।
मानसशास्त्र और समाजशास्त्र मेरे दो चरण है।
कला और कारीगरी मेरे हाथ हैं।
विज्ञान मेरा मस्तिष्क है। धर्म मेरा श्वास है।
उत्साह और उद्योग मेरे फेफड़े है।
धैर्य मेरा व्रत है। श्रद्धा मेरा चैतन्य है।
ऐसी मैं जगदंबा हूँ, जगद्धात्री हूँ।
मेरा उपासक कभी किसी का मोहताज़ नहीं रहेगा
उसकी सभी कामनाएँ मेरी कृपा से तृप्त हो जायेंगी
– आचार्य काका कालेलकर

आज जब सारा विश्व सिमटकर मुठ्ठि में कैद हो गया है, भूमण्डलीकरण, उपभोक्तावाद व बाजारीकरण ने 'कर लो दुनिया मुठ्ठि में' तथा 'एक आइडिया जो बदल दे आपकी दुनिया' या फिर 'जो दिखता है वहीं बीकता है' जैसे विज्ञापनिय सूत्रों को समूचे समाज तथा विश्व का एक मात्र आधार बना दिया है, तब शिक्षा के बारे कहीं गई आचार्य काकासाहब कालेलकर की उपर्युक्त पंक्तियाँ बर्बस याद आ जाती है। इसमें शिक्षा को मुक्त तथा जगद्धात्री कहकर साधक की एक मात्र साधना का केन्द्र बनाया गया है मगर अफसोस तब होता है, जब साधना का मार्ग स्पष्ट नहीं दिखता और साधक की प्रतिबद्धता नहीं होती।

आज देश में शिक्षा को लेकर भारी उथल-पाथल मची हुई है। उसकी आवश्यकता भी है। जिस प्रकार से आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय संकट न केवल भारत के समक्ष अपितु सम्पूर्ण विश्व के समक्ष एक महाकाय महाशक्तिमान राक्षस की तरह खडा हुआ है उसको परास्त करने के लिए एक महान शक्ति भी खड़ी होना अनिवार्य है। यह शक्ति शस्त्रों की नहीं, सत्ता की नहीं, धन की नहीं अपितु विचारों की, संस्कारों की एवं संकल्प की होते हुए भी अविचार, अनाचार एवं मनोदौर्बल्य के कारण से हम परास्त हो रहे हैं। सुख एवं शांति खो देते हैं, विनाश की ओर बड़ी तेजी से बढ़ रहे हैं। युगों से मनुष्य को विचारवान, सुसंस्कृत एवं मनोजेता, मनोवेता शिक्षा ने ही बनाया हैं।

इसलिए आज अगर शिक्षा को लेकर चिंतन और उथल-पुथल होती है तो वह समय की आवश्यकता व माँग है। हो सकता है यह चिंतन सर्वत्र फैले शिक्षा के अंदर फैले दूषणों का शोधन करने का कार्य करने में सफल हो जाय। गत हजारों वर्षों में भारतीय शिक्षा ने बड़ी मार सही हैं। प्रारंभ में मुघलों एवं तुर्कों के आक्रमणों ने ग्रंथ, विद्यालयों एवं विद्वानों का नाश किया, बाद में अंग्रेजों ने अपनी व्यावसायिक कुटिल नीति के तहत शिक्षा को मूल उद्देश्य व प्रकृति से दूर करके उसे कमरों में कैद करने का अधम कृत्य किया। रही सही कसर हमारी सत्ता, प्रशासन, सियासत ने पुरी कर दी। शिक्षा का व्यावसायिकरण करके तथा मजहब व धर्म के नाम पर वोटबैंक की राजनीति का शिकार शिक्षा को बनाया। परिणामत: आज प्रत्येक आचार, विचार, व्यवस्था, वातावरण संकूचित, मर्यादित व शंकाशिल दायरे में खड़ा है। इन सब ने मिलकर के कूलमिलाकर हमारी पाँच हजार वर्ष से भी प्राचीन शिक्षा परम्परा को उसके मूल से उखाड फेंकने का कार्य किया।

आज जब श्रेष्ठता की परम्परा बनना असंभव सा लगता हैं और किसी भी संस्था को सौ से अधिक वर्ष की श्रेष्ठता का आयुष्य नहीं प्राप्त होता हैं तब हमारी प्राचीन शिक्षा संस्थान नालन्दा एवं तक्षशिला जैसी विद्यापीठ सात सौ एवं एक हजार वर्ष तक अपनी श्रेष्ठतम परम्परा कैसे बरकरार रख पायी होगी यह भी एक खोज व गौरव का विषय है। हमारे प्राचीन शिक्षा संस्थान केवल ज्ञान के लिए ही नहीं, अपितु एक उत्तम व्यवस्था के लिए भी आज आदर्श है। कोई सरकारी अनुदान नहीं था, कोई सरकारी शिक्षा विभाग, आचारसंहिता या नियमावलि नहीं थी। शिक्षक विद्यालय चलाता था, पाठ्यक्रम बनाता था, पाठ्यपुस्तक बनाता था एवं स्वयं मूल्यांकन करके प्रमाणित भी करता था जिससे छात्र-अध्येता व्यक्तिगत रुप से अधिक विकसित एवं दायित्व बोध युक्त बनकर अपना जीवन निर्वाह तो करता ही था, समाज व राष्ट्र के कल्याण में भी योगदान देकर अपनी शिक्षा कद्धो सिद्ध करता था जिससे वह खूद तो एकात्म, सुसंस्कृत, समर्थ और सम्पन्न बनता ही था, समाज व राष्ट्र भी समर्थ, सुसंस्कृत व सम्पन्न

बनते थे।

आज जब सरकार हर साल बड़ी-बड़ी रकम की अनुदान की घोषणा करती है, फिर भी कम पड़ती है। हर तरह टेक्नालॉजी की भरमार होने के बावजूद मूल ज्ञान व अनुभवहीन पीढ़ी तैयार हो रही है। मोटी संख्या में अध्यापकों के पगार होने के बावजूद असंतोष छाप हुआ है। क्लास डिजिटल हो गए है, अध्यापक ऑनलाईन हो गए है, फिर भी अध्येता कहीं 'लाईन' पर नहीं है। सेमेस्टर सिस्टम व ऑन लाईन एज्युकेशन के उद्देश्य कहीं सिद्ध होते नज़र नहीं आते। अध्यापकों एवं अध्येता के ज्ञानात्मक एवं वैचारिक, चारित्रिक विकास की स्थिति दयनिय है जो महती चिन्ता के विषय हैं। उच्च शिक्षा की हालत यह है कि वर्ग सिर्फ इमारतें एवं मशीन ही रह गयी है अध्यापक एवं छात्र को ढूँढना पड़े ऐसी स्थिति आ पड़ी है। २०१२ में डी.यु. के स्नातकोत्तर विभाग को दुनिया के १०० सर्व श्रेष्ठ शैक्षिक केन्द्र की रैंकिंक में शुमार किया गया था वहीं अब पाँच वर्षो में लगातार पिछटकर अदृश्य हो गया हैं। द टाइम्स वर्ल्ड यूनिवर्सिटीज़ रैंकिंग २०१३ के मुताबिक अमेरिका का केलिफोर्निया प्रौद्योगिकी संस्थान प्रथम नंबर पर है जबकि भारत का स्थान २०० में भी कहीं नहीं है। कभी दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के साधकों के अध्ययन-अध्यापन-प्रशिक्षण का मक्का कहा जानेवाला भारतीय जनसंचार संस्थान पूरे एशिया में न सिर्फ लब्धप्रतिष्ठित था, अपितु शीर्षस्थ भी। पर आज देश के मुख्य संस्थआनों की भाँति यहाँ भी गुणात्मक ह्रास आया है। अध्ययन के लिहाज से सबसे समृद्ध पुस्तकालय की उपलब्धता के बावजूद छात्र वहाँ समय बिताने व पढ़ने की प्रवृति व संस्कृति से विमुख हो गए है। छात्रों में शोधकार्य को लेकर रसरुचि नहीं रहे है। वह तैयार नोट्स व गुगलदेवता के भरोसे अपनी डिग्रीयाँ पा लेते है। मूल चीजों को समग्रता के साथ विश्लेषणात्मक दृष्टि से समझने-सीखने की जहमत उठाना उनको समय बर्बाद करना लगता है। अमेरिका में शोधकार्य को महत्व दिया जाता है अत: वहाँ नोबेल पुरस्कारों की भरमार होती है, जबकि हमारे यहाँ अध्यापकों एवं अध्येता दोनों की शोध कार्य में उदासिनता रहती है।

१५ साल पहले प्रबंधन गुरु पीटर डकर ने ऐलान किया था कि आनेवाले दिनों में ज्ञान को समाज दुनिया के किसी भी समाज से ज्यादा प्रति स्पर्धात्मक समाज बन जायेगा। दुनिया में गरीब देश समाप्त हो जायें, लेकिन किसी भी देश की समृद्धि इस बात से आँकि जायें कि वहाँ की शिक्षा का स्तर किस तरह का है। आज भारत के पास अपने आपको सिद्ध करने का एक सुनहरा अवसर है। इस समय हमारे दैश की आधी आबादी २५ साल से कम उम्र की है। इनमें से १२ करोड़ लोगों की उम्र १८ से २३ साल के बीच की है। यदि इन्हें ज्ञान व हुन्नर से लैस कर दिया जाये तो ये अपने कंधों पर भारत को विश्वफलक पर फिर से पाँच हजार वर्ष पूर्व के सुवर्णकाल का स्वाद चखा सकती है।

मगर सियासत व निकम्मे कर्मचारीयों की अनीति के कारण ऐसा हो नहीं पा रहा है। प्रत्येक विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम अलग है, जिन्हें कयी सालों से बदला नहीं गया है। पुराना पाठ्यक्रम वर्तमान छात्र के मानसिक स्तर तक नहीं पहूँच पाता अत: इससे ना समझ की खाई गहरी होती जाती है और यह प्रक्रिया उच्च शिक्षा को मारने के लिए काफी है। अत: उच्च शिक्षा की आज की सबसे बड़ी चुनौती है- सभी प्रदेशों में एक समान शिक्षा नीति का लागु होना। अगर सभी राज्य व विश्वविद्यालय परस्पर समन्वय स्थापित कर एक सम्यक्, समावेशी, सुदृढ, समग्र और संतुलित पाठ्यक्रम का ढाँचा निर्माण करे तो उच्च शिक्षा के गिरते स्तर को काबु में लाया जा सकता है। जब हमारा राष्ट्रगान एक है, राष्ट्रगीत एक हैं, राष्ट्रीय चिह्न एक है, पक्षी एक है, संविधान एक है तो फिर शिक्षा-पद्धति क्यों अलग है ? मनुष्य के निर्माण में शिक्षा की भूमिका बहुत बडी है और अगर वह ही कच्ची और दिशाहीन हो तो फिर एक समाज एक राष्ट्र का सपना कैसे साकार हो सकता है भला। अगर हम समान शिक्षापद्धति, पाठ्यक्रम को लागु करते है तो राष्ट्र निर्माता कहें जानेवाले अध्यापक, जागरुक अभिभावक व जिज्ञासु छात्र आपसी समन्वय का निश्चय करते हैं तो आने वाले समय में सच में भारत को विश्वगुरु बनने से कोई नहीं रोक सकता।

साथ ही नयी टेक्नोलॉजी का उचित उपयोग करके अपनी मूल शिक्षा परंपरा को भी सुरक्षित रखा जा सकता है। केवल बाहरी विकास ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं होना चाहिए आत्मिक ज्ञान की उपलब्धि भी उतनी ही जरुरी है। गुणात्मक शिक्षा के साथ साथ व्यावसायिक शिक्षा की ओर भी प्रयत्न जरुरी हैं। अत: केवल क्लास टीचींग नहीं, प्रेक्टीकल समझ भी जरुरी है। गांधीजी के शिक्षा सम्बन्धी विचार इस दृष्टि से अपनाने योग्य है। छात्र ऐसी शिक्षा प्राप्त करें कि वह किसी का मोहताज़ न रहे और अपने मौलिक विचारों से अपना एवं अपने समाज, राष्ट्र का सहयोग करें। नैतिक शिक्षा भी उतनी ही जरुरी है। रास्ते की दुर्घटना देखकर बच्चें केवल 'सेल्फि' न ले, बल्कि उसी मोबाईल से १०८ को बुलाकर घायल को अस्पताल तक पहूँचाये इतनी मोरालिटी अपने आप जन्में ऐसे पाठ्यक्रम व अध्यापक की शिक्षा पद्धति होनी चाहिए। अध्यापकों को भी समय समय पर सतत सीखते रहना चाहिए ताकि व अपने छात्रों के मानसिक स्तर तक जाकर उसे सही तरह शिक्षा दे सके। सतत पढ़ने रहना तथा देश-दुनिया की आविष्कार तथा बदलाव को स्वीकारते हुए परिवर्तनशील होना भी जरुरी है। संक्षेप में जो आज लूट चूका है वह वापस तो नहीं आ सकता पर नया विचार, पद्धति अपनाकर शिक्षा को फिर से उन्नत जरुर बनाया जा सकता है। हर विश्वविद्यालय जब यह कार्य करेगा तब शायद सत्ता व सियासत को दखलंदाजी करने की जरुरत भी नहीं पडेगी और सही अर्थो में एक उत्तम शिक्षा संस्थान बन पायेगे। आतंकवाद, भ्रष्टाचार, बेईमानी, संदनहीनता जैसी आफ़तों का यूं ही सफ़ाया हो जायेगा। शिक्षा की संस्थान को जीविका तक सीमित न होकर जीवन के लक्ष्य को स्पष्ट करने में, जीवन को सार्थक रुप से जीने में है। विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम तो साधन मात्र है। व्यक्ति बिना सिखाये भी वातावरण से, परिस्थिति से, अनुभव से देख-सुनकर काफी कुछ सीख लेता है। ज्ञान-विज्ञान एवं दर्शन से मन-मस्तिष्क में एक प्रकार का संस्कार उत्पन्न करना ही शिक्षा का अभीष्ट है। शिक्षा यदि संस्कारिता नहीं

करती है तो वह शिक्षा अपने आप में अपूर्ण हैं. अत: उच्च शिक्षा संस्थानों को चाहिए कि वह शिक्षा को केवल अर्थोपार्जन का माध्यम या उद्देश्य न बनाये बल्कि एक भयरहित, स्नेह संपूरित एवं समग्र व्यक्तित्व एवं उसकी आत्म छवि के प्रति सम्मानभाव वाला वातावरण खडा करें।

एक अध्यापक होने के नाते यह भी मानते है कि आज शिक्षा बहुआयामी जरुर है पाठ्यक्रम की दृष्टि से महत्वाकांक्षी भी है, विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण हैं, सब कुछ है फिर भी यह सच है कि आज के तथाकथित शिक्षितों में जीवन की धारा आदर्श से विपरीत बह रही है। उच्च शिक्षा संस्थानों के पास १८ से ३० साल की युवापीढ़ी है। अगर वह थोडा प्रयत्न व सुधार करें तो इन युवापीढ़ी को सक्षम व समर्थ बनाया जा सकता है। विकास के साथ उच्च शिक्षा के परिवर्तन व नवीनता का होना समय की माँग है। जो श्रेष्ठ विचारों को संजोये ओर कूड़ाकर्कट बाहर करें, साथ ही अपनी सनातन संस्कृति के स्थाई तत्वों को वर्तमान से जोड सके ऐसे नियम व अनुशालनवाली शिक्षा पद्धति कायम करने से उच्चशिक्षा का स्तर सुधरेगा। कहाँ, क्या, कितनी, क्यों, कमी है यह उच्च शिक्षा संस्थानों को भलीभाँति जान लेना चाहिए और उचित परामर्श व चर्चा से हल ढूँढना चाहिए। ऐसा करने से समकालीन उच्च शिक्षा का भविष्य उज्जवल बनाया जा सकता है।

संदर्भ

1. भारतीय शिक्षा परंपरा एवं वर्तमान संदर्भ, संपादक – इंदुमती काट दे रे
2. प्रकाशक – संस्कार गुर्जरी, गुजरात प्रदेश, अहमदाबाद, आवरण पृष्ठ से सामग्री.